Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SISRRJ | Volume 1 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

वैदिककालीन कृषि व्यवस्था

डॉ. (श्रीमती) कामना सहाय,
सहआचार्य (संस्कृत), स. ध. राज. महाविद्यालय, ब्यावर (अजमेर)।

शोधसंराश – ''अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्''।[1] अन्न ही ब्रह्म है क्योंकि अन्न से ही प्राणियों की उत्पत्ति होती है एवं वृद्धि होती है। मानव सृष्टि का मुख्य आधार अन्न है। इसके बिना हमारी जीवन यात्रा नहीं चल सकती है। इसलिये सृष्टि प्रारम्भ से लेकर सृष्टि प्रलय तक अन्न का ही महत्व रहा है और रहेगा। अन्न कृषि पर निर्भर है। यदि हम वैदिक काल में विद्यमान कृषि व्यवस्था को देखें तो ज्ञात होता है कि उस समय कृषि एवं पशुपालन वैदिक आर्यों की जीविका का आधार था। वर्तमान युग में हम जिस अन्न का सेवन कर रहे हैं वह भले ही आधुनिक विधि से प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो रहा है किन्तु उसका गुणात्मक स्तर न्यून होता जा रहा है। हमारे वैदिक ऋषियों ने इस गुणवत्ता को बनाये रखने के लिये ऐसे कई सूक्तों की रचना की है जिसमें कृषि एवं कृषि के साधनों को भी हमारी कृषि के अनुकूल बनाने के लिये प्रार्थना की गई है। आर्यों की धारणा थी कि मानव कल्याण के लिये देवताओं ने सर्वप्रथम खेती का काम करना आरंभ किया था। आर्य कृषि को बड़ा महत्व देते थे। ऋग्वेद में तो कहा गया है कि ''अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्वः0।''[2] इसी प्रकार अन्य अनेक वेदमंत्र भी कृषि के लिये उपदेश देते हैं।[3] यह उपदेश तत्कालीन कृषि प्रेम को दर्शाता है। ऋग्वेद में बताया गया है कि अश्विनी कुमारों ने स्वर्ग में हल के द्वारा सर्वप्रथम हल–कर्षण किया था तथा मनुष्य के लिये हल से जौ बो कर अन्न उत्पन्न कर के आर्य जाति के लिये विस्तीर्ण ज्योति प्रकाशित की।[4]

मुख्य शब्द– कृषि, जीवन यात्रा, आर्तना, अप्नस्वत, चाबुक, आवरणकर्ता

1. क्षेत्र (खेत): ऋग्वेद में क्षेत्र (खेत) शब्द का प्रयोग इस बात को स्पष्ट करता है कि उस समय अलग–अलग खेतों का अस्तित्व था।[5] कुछ स्थलों पर यह शब्द कृषि भूमि का द्योतक है।[6] खेत दो प्रकार के होते थे– उपजाऊ (अप्नस्वती) तथा बंजर (आर्तना)।[7] खेतों के लिये नहरों से पानी देने की व्यवस्था थी। उत्तम खाद का प्रयोग अधिकाधिक अन्न उत्पन्न करने के लिये किया जाता था।[8]

वैदिक युग में खेतों की माप होती थी।[9] खेतों पर लोगों का वैयक्तिक प्रभुत्व था। इसका संकेत ऋग्वेद के एक सूक्त के द्वारा भी होता है जिसमें अपाला का अपने पिता की उर्वरा भूमि पर प्रभुत्व उसी के समान माना गया है, जैसे उसके सिर के बाल उसके व्यक्तिगत अधिकार में थे।[10] इससे प्रतीत होता है कि खेती की भूमि को उन लोगों ने कालान्तर में अपने प्रयोगों के द्वारा इतना उर्वरा कर लिया था कि वंश परम्परा से वे उन खेतों पर अधिकार रख कर उन्हें अपनी जीविका का साधन बनाते थे।

2. कृषिकर्म एवं हलः वैदिक युग में खेत को हलों से जोत कर बीज बोने के योग्य बनाया जाता था। हल का साधारण नाम 'लांगल' या 'सिर' था, जिसके अगले नुकीले भाग को 'फाल' कहते थे। इसकी मूठ बड़ी कठोर और चिकनी होती थी। हल में एक लम्बा मोटा बांस बांधा जाता था। (ईषा) जिसके ऊपर जुआ (युग) रखा जाता था, जिसमें रस्सियों से बैलों का गला बांधा जाता था। हल खींचने वाले बैलों की संख्या छः, आठ, बारह तक होती थी, जिससे हल के भारी तथा वृहदाकार होने का अनुमान किया जा सकता है। कुछ हल ऐसे भी थे जिनमें चौबीस बैल तक जोते जाते थे।[11] हलवाहा अपने पैनों (चाबुक) से इन बैलों को हांकता था।

खेतों में खाद डाली जाती थी तथा विशेष परिस्थितियों में घी और मधु का खाद रूप में प्रयोग होता था।[12] सिंचाई के लिये नहरें निकाली जाती थीं जिनका नाम 'खनित्रिम' था। फसलें बोने, जोतने, काटने तथा मीड़ने की प्रक्रियाएं भी वैज्ञानिक ढंग पर चल चुकी थीं।[13] दाण तथा सृणि नामक हंसिये से काट कर पूले बनाये जाते थे। पूले का नाम पर्ष था। जिस स्थान पर पौधों को मीड़ कर अन्न को अलग करते थे, उनका नाम खल था।[14] भूसे या डण्ठल से अन्न को वायु के वेग से चालन से अथवा सूप से अलग करते थे।[15] इस काम को करने वाला 'धान्यहृत्' कहलाता था।[16] अन्न को ऊर्दर नामक पात्र से नापते थे।[17] शस्य वर्ष में दो या तीन बार होता था।[18] वैदिक काल में लोग शक के धूम का निरीक्षण कर के भविष्य के जल–वायु तथा ताप का अनुमान कर लेते थे।[19] इस प्रकार का विशिष्ट उत्पादन वैज्ञानिक आधार पर ही संभव हो सका था।

3. वृष्टिः वैदिक आर्य लोग अपने कृषि कर्म के लिये वृष्टि पर अवलंबित रहते थे। इसी कारण वेद में वृष्टि के देवता का प्राधान्य माना गया है। वृष्टि को रोकने वाले दैत्य का नाम वृत्र (आवरणकर्ता) था, जो अपनी प्रबल शक्ति से मेघों के गर्भ में होने वाले जल को रोक देता था। इन्द्र अपने वज्र से वृत्र को मार कर छुपे हुए जल को बरसा देता था तथा नदियों को गतिशील बनाता था।[20] यास्क ने निघण्टु में वृत्र को मेघ अर्थ में गिना है।[21] वैदिक देवता मण्डल में इन्द्र की प्रमुखता का रहस्य आर्यों का कृषिजीवी होना ही है।

4. सिंचाईः वैदिक साहित्य के अनुसार खेतों की सिंचाई प्रधानतः कुओं से प्रायः उसी प्रकार होती थी जैसी वर्तमान में प्रचलित है। तत्कालीन कुओं के नाम अवत और उत्स मिलते हैं। जल चक्र से निकाला जाता था। उस चक्र से वरत्रा सम्बद्ध होता था और वरत्रा से कोष लगा होता था। लकड़ी के कुण्ड से आहाव में जल ढाला जाता था। जल को सुर्मी और सुषिरा (नाली) से खेतों तक पंहुचाया जाता था।[22] कुल्या नहरों के समान थीं, जिससे बड़े ह्रद में पानी इकट्ठा किया जाता था।[23] नहरें खोदने के उल्लेख अथर्ववेद में मिलते हैं।[24] नहर को गाय रूपी नदी का वत्स माना गया है। ऋग्वेद में जल दो प्रकार का बताया गया है– खनित्रिमा और स्वयंजा।[25] कूप कवट का उल्लेख ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर मिलता है। ऐसे कुओं का जल कभी कम नहीं होता था। इन कुओं का जल बड़ी–बड़ी नालियों से बहता हुआ खेतों में पंहुचता था और उन्हें उपजाऊ बनाता था।

5. ऋतु: कृषि की ऋतुओं का तैत्तिरीय संहिता में उल्लेख मिलता है, इसमें बताया गया है कि जौ ग्रीष्म ऋतु में पकता था, चावल शरद ऋतु में पकता था तथा वर्षा के आरम्भ में बोया जाता था। परन्तु माष और तिल ग्रीष्म ऋतु की वर्षा के समय बोया जाता था और जाड़े में पकता था।[26]

फसल वर्ष में दो बार काटी जाती थी।[27] कौषीतकि ब्राह्मण के अनुसार जाड़े की फसल चैत्र मास तक पक जाती थी। कृषकों की अनेक कठिनाइयां होती थी। बिल में रहने वाले जीव बीजों को नष्ट कर देते थे। पक्षी और विभिन्न प्रकार के सर्प श्रेणी के अन्य जीव नये अंकुरों को हानि पंहुचाते थे। अतिवृष्टि और अनावृष्टि भी फसल को क्षति पंहुचाती थी। अथर्ववेद में इन विपत्तियों से बचाव के लिये अभिचारीय मंत्र भी दिये गये हैं।

6. शस्य: ऋग्वेद में यव और धान इन्हीं दो अनाजों का उल्लेख मिलता है, पर यव और धान से यह निश्चित नहीं हो पाता कि वे कौनसे अनाज थे अथवा वे आधुनिक जौ और धान के पूर्वज हैं। परवर्ती वैदिक साहित्य में अनेक अनाजों के नाम मिलते हैं– ब्रीहि, यव, मूंग, माष, तिल, खल्व, गोधूम, नीवार, प्रियंगु, मसूर तथा श्यामाक।[28] उस समय उपजने वाले उवारू तथा उर्वारूक ककड़ी थे।[29] वैदिक काल से भारत में अनेक प्रकार के धानों की खेती रही है, इनके नाम हैं– ब्रीहि, महाब्रीहि, तण्डुल, शारिशाका, आशु, प्लाशुक, नीवार, हायन आदि।[30] परवर्ती वैदिक युग में ईख की खेती की चर्चा मिलती है।[31] तेल के पौधों की खेती की वैदिक काल में प्रगति हुई है। तिल की खेती प्रधान रूप से होती थी।[32] तिल के अतिरिक्त सरसों की खेती भी होती थी।[33] एरण्ड की खेती का उल्लेख भी मिलता है तथा सन के वन में उत्पन्न होने की चर्चा वैदिक साहित्य में मिलती है।[34] उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि वैदिक काल कृषि की दृष्टि से बहुत समृद्ध था।

वैदिक आर्यों ने कृषि से सम्बद्ध अनेक देवताओं की कल्पना की। उनमें से प्रमुख क्षेत्रपति, सीता, इन्द्र, पर्जन्य आदि हैं। कृषि को मंगलमय बनाने के लिये वैदिक ऋषियों द्वारा समय–समय पर देवताओं की स्तुतियां की हैं। उन्होंने क्षेत्रपति नामक एक देवता की स्वतंत्र सत्ता मान ली है तथा उससे प्रार्थना की है कि हे क्षेत्रपते, गाय जिस प्रकार दूध देती है उसी प्रकार तुम भी मधुस्रावी, पवित्र और घृत–तुल्य जल प्रदान करो।[35] बैल एवं किसान सुखी रहें, हल सुखपूर्वक जोतें। इन्द्र सीता का निग्रह करे, उषा उसका नियमन करे तथा पयस्वती सीता हम लोगों के लिये उत्तरोत्तर फलदायिनी हो।[36] अथर्ववेद के तीसरे काण्ड का सत्रहवां सूक्त ''कृषि सूक्त'' है, इसमें वैदिक ऋषि ने प्रार्थना की है कि हल से जोती हुई भूमि को वृष्टि के देव इन्द्र उत्तम वर्षा से सींचें तथा सूर्य अपनी उत्तम किरणों से रक्षा करे।[37] इस सूक्त में जलवायु की अनुकूलता को कृषि के लिये महत्वपूर्ण मानते हुए कहा है कि जब भूमि घी और शहद से योग्य रीति से सिंचित होती है और जलवायु आदि देवों की अनुकूलता उसको मिलती है तो वह उत्तम, मधुर, रसयुक्त धान्य और फल देती है।

वैदिक ऋषि की इस प्रशस्ति से स्पष्ट होता है कि उस समय कृषि का सारा आयोजन मनोरम था और कृषि कर्म को लोग दैवी विधान मानते थे। कृषि की इस लोकप्रियता के पीछे समाज की अन्न सम्बंधी मान्यताएं

थीं, जिनके अनुसार अन्नवान् और अन्नाद उच्च कोटि की प्रतिष्ठास्पद उपाधियां मानी गईं और अन्न का इतना अधिक महत्व था कि यह नियम बन गया कि न तो अन्न की निन्दा करो न ही परित्याग। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि अन्न का परिमाण अधिकाधिक बढाओ तथा परिश्रमपूर्वक यह कार्य करना ही है। अन्न को देवता मान कर उसके संवर्धन की कामना करते हुए कहा गया है कि हे अन्न, उन्नत हो जाओ, अपनी शक्ति से बहु हो जाओ। दिव्य अशनि तुम्हारा वध न करे, तुम आकाश की भांति उॅचे उठो, समुद्र के समान पूर्ण और अक्षय बनो, तुम्हारी राशि अक्षय हो, तुम्हारी उपासना करने वाले अक्षय हों, तुमको खाने वाले अक्षय हों।[38]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिकयुगीन कृषि–कर्म वैज्ञानिक विधि से अत्युच्चावस्था में वर्तमान था, जो वर्तमान युग के कृषि–कर्म के लिये प्रेरणा स्त्रोत है। यदि पुनः उसी दृष्टि से कृषि व्यवस्था की जाये तो वैदिकयुगीन कृषि–कर्म सारे प्राणियों के लिये कल्याणकारी सिद्ध होगा।

.....

संदर्भः

1. तै. आ. 9.2; तै. उ. 3.2
2. ऋ.वे. 10.34.13
3. अथर्व वे. 8.10.12; 12.1.13 तथा शु.यजु. 4.10
4. ऋ.वे. 8.22.6; 1.117.21 एवं अथर्व वे. 8.10.24
5. ऋ.वे. 10.33.6
6. ऋ.वे. 1.100.18
7. ऋ.वे. 1.127.6
8. ऋ.वे. 7.49.2 तथा अथर्व वे. 1.6.4; 3.14.3–4; 19.31.3
9. ऋ.वे. 1.110.5
10. ऋ.वे. 8.91.5
11. अथर्व वे. 3.17.3; काठक संहिता 15.2; बारह बैल के हल– तै.सं. 1.8.7.1; 5.2.5.2;
    1ण छः बैल के हल– अथर्व वे. 6.91.1; 8.9.16; तै.सं. 5.2.5.2; आठ बैल के हल– अथर्व
    2ण वे. 6.91.1
12. अथर्व वे. 3.17.9
13. श. ब्रा. 1.6.1–3 तथा ऋ.वे. 10.94; 10.48; 10.27; 8.78.10; 10.101.4
14. ऋ.वे. 10.48.7

15. ऋ.वे. 10.71.2 तथा अथर्व वे.12.3.19

16. ऋ.वे. 10.94.3

17. ऋ.वे. 2.14.11

18. तै. सं. 5.17.3; 4.2; 7.2.10; 5.1.7.3

19. अथर्व वे. 6.128.1–4

20. ऋ.वे. 2.12.3

21. यास्क निघण्टु 2.5.17

22. ऋ.वे. 10.10.17; 10.101.7; 8.72.10; 10.101.6; 10.101.11; 1.101.6–7; 8.69.12

23. ऋ.वे. 10.45.3

24. अथर्व वे. 3.13.10; 43.7

25. ऋ.वे. 7.49.2

26. तै. सं. 7.2.10.2

27. तै. सं. 5.1.7.3

28. वाजसनेयि संहिता 18.12

29. अथर्व वे. 6.14.2; 14.1.17

30. अथर्व वे. 6.140.2; 8.7.20; 10.9.26। तै.सं. 1.8; 10.1। श.ब्रा. 5.3.3.2

31. अथर्व वे. 1.34.5; 12.2.54। मै.सं. 3.7.9

32. अथर्व वे. 2.8.3; 12.2.54

33. षड्विंश ब्रा. 5.2; छान्दोग्य उ. 3.14.3

34. शांखायन आ. 12.8 एवं अथर्व वे. 2.4.5 तथा श.ब्रा. 3.2.1.11

35. ऋ.वे. 5.47

36. ऋ.वे. 5.47

37. अथर्व वे. 3.17.1–9

38. अथर्व वे. 6.142

.....